कक्क के कारनामे

पी.के.बसन्त

कक्कु ग्यारह साल का था और छठी क्लास में पढ़ता था। अपने डील-डौल के चलते जिस क्लास में भी जाता वहाँ के और बच्चों पर भारी पड़ता। पापा की बदली होती रहती थी। कभी वह शहर के स्कूल में होता तो कभी निपट गाँव में पहुँच जाता। पढ़ना-लिखना उसे बेहद नापसन्द था, लेकिन स्कूल में दोस्त बनाना और खेलना उसे उतना ही अच्छा लगता था। ऊपर से घर वाले तो उसे स्कूल भेजे बिना मानते नहीं। इसलिए वह चुपचाप स्कूल चला जाता था। तो प्रस्तुत है उसके कुछ ज़्यादा खट्टे और थोड़े मीठे अनुभव।

(1)

और घण्टी बजने लगी

पापा की बदली ने कक्कु को नबीगंज गाँव के स्कूल में ला पटका। स्कूल था कि कबाड़खाना। ईंट के बने छः कमरे, ऊपर फूस और खपरैल की छत। बरसात के दिनों में बाहर कम और भीतर ज़्यादा पानी बरसता था। अलग-अलग जगहों पर बर्तन रख दिए जाते थे कि पानी उन्हीं में टपके। बहुत ज़्यादा बरसात के दिनों में छुट्टी हो जाती थी।

और क्लास के बच्चों का क्या पूछना - बाल में इतना तेल लगाते थे कि लगता था मानो तेल टपकने ही वाला

है। पैंट इतनी लम्बी कि वे उसे अगले चार-पाँच साल तक पहन सकें। पैर में जूते क्या चप्पल भी नदारद। हिन्दी बोलते थे तो लगता था कि भोजपुरी बोल रहे हों।

और शिक्षकों का क्या पूछना - छः कक्षाएँ थीं और तीन शिक्षक - आधे समय एक क्लास में आधे समय दूसरी क्लास में। किसी भी समय तीन कक्षाओं में शिक्षक नहीं होते थे। ऐसे में छड़ी बड़े काम आती थी। हर कक्षा में छड़ी पहले घुसती थी और शिक्षक बाद में। छड़ी जिसने न जाने कितना तेल पिया था। पीठ पर लगती तो वहीं चिपकी रह जाती और उसका दाग तो हफ्तों रहता। छड़ी का कमाल होता कि कक्षा में नीरव शान्ति छा जाती। लेकिन यह चुप्पी ज़्यादा देर नहीं चलती थी। किसी ने किसी की पेंसिल ले ली, तो किसी ने किसी के बाल खींच दिए, या किसी ने किसी को चिंटी काट ली। इस चिल्ल-पों के बीच अचानक कहीं से छड़ी जागती और फिर अगले चार-पाँच मिनटों तक कितनों की पीठ सेंकती। उस दौरान चीखने-चिल्लाने और रोने के बाद फिर से शान्ति छा जाती। हर दिन चुप्पी और शोर-शराबे के बीच स्कूल का समय निकल जाता। कक्कु चूँकि ऑफिसर का बेटा था इसलिए मास्टर लोग छड़ी से उसकी पिटाई नहीं करते थे। अब यह घटना कक्कु के स्कूल जाना शुरू करने के कुछ दिनों बाद ही हुई। कक्कु की दोस्ती दीपू से हो गई थी। दीपू के पिता भी सरकारी अधिकारी थे और वह भी कुछ दिनों पहले ही शहर से आया था। अब ऐसा हुआ कि कक्कु को शौचालय जाने की ज़रूरत महसूस हुई। एक नम्बर - मतलब छोटे शौच के लिए। स्कूल में शौचालय का मतलब था पिछवाड़े के खुले खेत में चले जाना। कक्कु वहाँ पहुँचा और जैसे ही सुस्सु करना शुरू किया, पता नहीं कहाँ से दीपू आ गया। उसने आवाज़ लगाई 'स्टैचू'। अब इस खेल में यह नियम था कि जो जैसी मुद्रा में हो उसी में मूर्तिवत खड़ा रहेगा। उस स्थिति से मुक्ति के दो ही उपाय थे। या तो कोई दूसरा आकर आपको छू दे या स्टैचू कहने वाला व्यक्ति आपको माफी दे दे। पिछले दिन ही कक्कु ने खेल के मैदान में दीपू को दस मिनट

तक खड़ा रखा था। दीपू था बड़ा दुष्ट - ऐसी जगह चुनी जहाँ देर तक कोई न आए। अब डूबते सूरज की ओर मुँह किए, हाथ में सुस्सु पकड़े लगभग पाँच मिनट तक कक्कु बिना हिले-डुले खड़ा रहा। दीपू भी वहाँ मज़े लेता हुआ खड़ा था। तब तक मास्टर जी आ गए।

"तुम दोनों इतनी देर से पेशाब किए जा रहे हो - ये क्या बदमाशी है?"

"सर, दीपू ने स्टैचू कह दिया था।"

"भाग यहाँ से।"

दीपू और कक्कु, दोनों कक्षा की तरफ भागे। दीपू अभी भी इशारा कर रहा था कि कक्कु ने नियम तोड़ा था और उसके बदले उसे दस मुक्के खाने पड़ेंगे। कक्कु इशारे से यह बता रहा था कि वह क्या करे, मास्टर साहेब ने उसे वहाँ से भगा दिया।

मास्टर जी जब वापस कक्षा में आए तो कक्कु पर काफी गुस्सा थे। चाहते तो थे कि छड़ी का कमाल दिखाएँ, लेकिन ऑफिसर का बेटा था - पता नहीं क्या शिकायत हो जाए। उन्होंने उस दिन के लिए कक्कु को क्लास से निकाल दिया।

क्लास के बाहर कक्कु बेचारा अजीब उलझन में पड़ गया। अभी छुट्टी होने में लगभग एक घण्टा बाकी था। घर वापस जाता तो जल्दी पहुँचने पर तरह-तरह के सवाल पूछे जाते और शायद पिटाई भी होती। ऊपर से सारे

दोस्त तो स्कूल में थे। उनके बिना खेल-कूद किसके साथ करता? और दीपू से बदला भी लेना था। कक्कु थोड़ी देर स्कूल के आसपास मण्डराता रहा फिर स्कूल की मुण्डेर पर बैठ गया। पास में एक गाय जुगाली कर रही थी। लेकिन गाय का जुगाली करना आखिर कितनी देर तक देखा जा सकता है? अचानक उसकी नज़र पास लटकी घण्टी पर अटक गई। रेल की पटरी का एक छोटा-सा हिस्सा एक तार से लटका दिया गया था। उसी के ऊपरी सिरे में एक हथौड़ा अटका कर रखा रहता था। स्कूल में मास्टर जी से भी ज़्यादा कोई शक्तिशाली था तो वह थी यह घण्टी। घण्टी बजती तो सारे बच्चे क्लास के अन्दर, घण्टी बजती तो सब लोग क्लास के बाहर। कक्कु थोड़ी देर तक उसी घण्टी को निहारता रहा। फिर उसके थोड़ा पास चला आया। फिर थोड़ा और पास। पता नहीं कौन-सी अनजान शक्ति उसे खींच रही थी। वह घण्टी के पास, और पास आता चला गया। पता नहीं कब हथौड़ा उसके हाथ आ गया। फिर उसे लगा अब तो छुट्टी का समय हो ही गया है - थोड़ा-मोड़ा इधर-उधर होने से क्या फर्क पड़ता है। और इसके पहले कि कक्कु कुछ समझता, वह ज़ोर-ज़ोर से घण्टी बजा रहा था।

घण्टी बजनी शुरू हुई तो रुकने

का नाम न ले। घण्टी बजने का असर अलग-अलग लोगों पर अलग-अलग हुआ। जिन तीन कक्षाओं में शिक्षक नहीं थे वहाँ के बच्चे 'छुट्टी-छुट्टी' का शोर करते हुए क्लास रूम से निकलकर स्कूल के बाहर भागे। मास्टर लोगों ने जब बच्चों को भागते देखा तो दौड़कर उन्हें रोकने गए। कुछ बच्चों को डाँट-डपट कर बिठाने की कोशिश की। लेकिन वे जिन कक्षाओं को छोड़कर निकले थे वहाँ के बच्चे 'छुट्टी-छुट्टी' कहकर निकल भागे। मास्टर लोग एक कक्षा से दूसरी कक्षा में भाग-दौड़ करते रहे और बच्चों की तदाद लगातार कम होती रही। आज उनकी डाँट-डपट यहाँ तक कि छड़ी भी बेकार हो गई। अन्त में बच्चों के शोर-शराबे के बीच उन्होंने मान लिया कि छुट्टी हो गई है। तब अचानक किसी शिक्षक के मन में आया - आखिर घण्टी किसने बजाई? लेकिन अब वहाँ कोई नहीं था। कक्कु के सारे साथी घण्टी सुनकर निकलने वालों की पहली जमात में थे।

(2)

गाँधी टोपी की कहानी

कक्कु के स्कूल में एक अजीबो-गरीब नियम था। सभी शिक्षकों एवं बच्चों को गाँधी टोपी पहननी होती थी। स्कूल शुरू होता था तो सभी बच्चे सफेद-सफेद तिकोनी-सी गाँधी टोपी पहन कर राष्ट्र भक्ति के कई गीत गाते थे। उसके बाद ही स्कूल में पढ़ाई-लिखाई शुरू होती थी। अब अगर कोई छात्र अहिंसा के पुजारी बापू की टोपी लाना भूल गया तो शिक्षकों की हिंसा उस पर बरस पड़ती थी। कई बार बच्चे टोपी रास्ते में खो देते। तब तो नई टोपी खरीदने का दाम घरवाले पिटाई करके वसूल करते। जब तक टोपी नहीं मिलती थी तब तक स्कूल वाले ऊठक-बैठक करवा कर, मुर्गा बनाकर और छड़ी चलाकर क्षति पूर्ति करते। इसलिए हर बच्चे के लिए टोपी बहुत ज़रूरी थी - कॉपी और किताब से भी ज़्यादा। कक्कु उन बच्चों में था जो अकसर टोपी लाना भूल जाते थे। पता नहीं कितनी बार उसे कान पकड़ कर ऊठक-बैठक करनी पड़ी। चाहे वो अफसर का बेटा ही क्यों न हो राष्ट्रपिता के अपमान के लिए सज़ा तो मिलेगी ही।

कक्कु सूझबूझ वाला लड़का था। सज़ा से बचने के उपाय खोजता रहता था। वह अपनी कक्षा का मॉनीटर भी था। उसने टोपी के बारे में एक उपाय ढूँढ़ ही लिया। क्लास में लोहे की सन्दूक थी। उसमें एक तिरंगा झण्डा और कुछ सजावट के समान रखे थे।

मॉनीटर होने के नाते सन्दूक की चाबी भी कक्कु के पास ही थी। उसने अपनी कक्षा के सभी बच्चों को समझा लिया कि यदि वे अपनी टोपी उस सन्दूक में रखें तो टोपी के घर छूटने या रास्ते में खोने की नौबत नहीं आएगी। स्कूल आकर सब लोग मज़े से टोपी पहन लेंगे। फिर सब लोग राष्ट्रगीत गाएँगे, पढ़ाई करेंगे। इतनी बड़ी समस्या का इतना आसान समाधान - बच्चों को समझ नहीं आया कि उन्होंने पहले यह क्यों नहीं सोचा। कुछ दिनों तक टोपियाँ सन्दूक में रखने का सिलसिला खूब अच्छे से चलता रहा। लेकिन एक दिन अनकही हो ही गई।

स्कूल के कार्यक्रम साढ़े दस से शुरू होते थे। कक्कु और उसके साथी लगभग नौ बजे सुबह ही स्कूल पहुँच जाते थे। फिर बक्सा-बैग जहाँ-तहाँ फेंककर खेल का सिलसिला शुरू होता था। पकड़म-पकड़ी, गदहा पीट, पिट्टो - इन तीन खेलों का तो कक्कु बेताज बादशाह था। गदहा पीट में गेंद से दूसरे बच्चों को मारना होता था। कक्कु का निशाना और तेज़ मारना मिलकर बहादुर बच्चों को भी रुला देते थे। बात एक सोमवार की थी। नौ बजते ही कक्कु और उसके दोस्त स्कूल पहुँचे और खूब धमा-चौकड़ी की। अभी साढ़े दस बजने में थोड़ा समय बाकी था। अचानक कक्कु को लगा कि उसकी दाहिनी जेब बहुत हल्की महसूस हो रही है। उसी जेब में वह सन्दूक की चाबी रखा करता था। जेब में हाथ डालकर देखा - जेब खाली थी। अब चाबी की खोज शुरू हुई। कक्कु, दीपू, मुन्ना और भीखू ने चप्पा-चप्पा छान मारा। चाबी का कहीं पता न था। चाबी को न मिलना था ना मिली। उधर घड़ी की सुई बड़ी बेदर्दी से साढ़े दस की तरफ बढ़ती जा रही थी। अब एक ही उपाय बचा था - कक्कु घर भाग चला। उसके पीछे-पीछे दीपू, मुन्ना और भीखू भी भाग लिए। घर पहुँचते-पहुँचते कक्कु पेट दर्द से दोहरा हो रहा था। उसके साथी तरह-तरह से घर पहुँचने में उसकी सहायता कर रहे थे।

उधर स्कूल में कक्कु की कक्षा में खलबली मच गई। सारे बच्चे बिना टोपी के ही राष्ट्रगान गा रहे थे। जब वे कक्षा में पहुँचे तो लम्बू मास्टर जी छड़ी लेकर आए। हरेक बच्चे की पिटाई हुई। इस पिटाई से बचे तो सिर्फ चार लोग - कक्कु और उसके साथी।

(3)

कक्कु का फुटबाल मैच

इसी बीच एक बार सभी दोस्तों ने तय किया कि फुटबॉल खरीदी जाए। अभी तक स्कूल में या गाँव की फील्ड में सभी बच्चे छोटे बॉल से ही खेलते थे। कभी-कभी तो कपड़े को बाँध कर ही फुटबॉल बना दिया जाता था तथा उसी से घण्टों खेल होता रहता था। कक्कु को फुटबॉल खेलने में मज़ा आने लगा था। साथ ही सबका बॉस तो था ही। सभी बच्चों ने मिलकर

पैसा इकठ्ठा करना शुरू किया। अन्त में 12 रुपए कम पड़ गए। अब क्या हो। कक्कु की मम्मी बैंक (गुल्लक) में कुछ पैसे इकट्ठे करके रखी हुई थीं। उसने सोचा कि अगर इसे फोड़ेंगे तो सबको पता चल जाएगा और अच्छी तरह से मार पड़ेगी। यहाँ उसके शैतान दिमाग ने काम किया। गुल्लक में जिस छेद से सिक्के डाले जाते थे वो थोड़ा चौड़ा था। उसने उसी छेद से आहिस्ते-आहिस्ते कपड़े सिलने वाली बड़ी सुई के सहारे कुछ रुपए निकाल लिए तथा उन पैसों से फुटबॉल खरीदी गई।

अब क्या कहने। खूब फुटबॉल खेली जाती। घर में भी फुटबॉल और स्कूल में भी फुटबॉल। कक्कु और उसके साथी जब स्कूल में फुटबॉल खेलते थे तब सातवीं क्लास के बच्चे अकसर खेल रोक देते थे। वे भी खेलना चाहते थे। लेकिन उनमें दम-खम ज़्यादा था। इसलिए यदि एक बार बॉल उनके हाथ लग गई तो फिर कक्कु और उसके साथी दर्शक बनकर रह जाते थे। पाई-पाई जोड़कर फुटबॉल खरीदी और सातवीं के बच्चे ऐसी दादागिरी करें, यह बात कक्कु को मंज़ूर नहीं थी। एक दिन मैदान में तू-तू मैं-मैं हो गई। सातवीं वालों ने कहा, "अरे तू तो फुटबॉल खेलना ही नहीं जानता। इसलिए हमारे साथ खेलने से घबराता है।" कक्कु को जोश आ गया, "ऐसा है तो मैच रख लो। देखता हूँ कौन फुटबॉल खेलना जानता है।"

मैच दो दिनों बाद टिफिन के समय तय किया गया। आठवीं क्लास का मॉनीटर रेफरी बनने को तैयार हो गया। अब कक्कु को अपनी टीम बनानी थी। कक्कु, दीपू, मुन्ना और भीखू तो फौरन तैयार हो गए लेकिन क्लास के अन्य बच्चे सातवीं के बच्चों से डरते थे। बड़ी मुश्किल से तीन और बच्चे खेलने को तैयार हुए। तय हुआ कि सात-सात बच्चों की ही टीम बनेगी।

खेल के मैदान में उस दिन खासा उत्साह था। बरसात के चलते मैदान में जहाँ-तहाँ कीचड़ हो गया था। सातवीं का गोलकीपर जहाँ खड़ा था वहाँ तो अच्छा खासा पानी जमा हुआ था। खेलने वालों में सिर्फ दो लोगों ने जूते पहन रखे थे - कक्कु और दीपू।

मैच शुरू हुआ। गोलकीपर को छोड़कर बाकी सभी खिलाड़ी टिड्डी दल की तरह बॉल के पीछे-पीछे दौड़

लगाते थे। उसमें बैक और फॉरवर्ड जैसा कोई खिलाड़ी नहीं होता था। छठी क्लास के बच्चे थोड़े सहमे-सहमे-से थे। ज़्यादातर बच्चों का निशाना बॉल पर कम और एक-दूसरे के पाँव पर ज़्यादा होता था। एक बार भीखू ने राजू के पास बॉल मारी। राजू जैसे ही बॉल को मारने वाला था उसने सातवीं के पाँच-छः खिलाड़ियों को अपनी तरफ झपटते देखा। बेचारा बॉल वहीं छोड़कर तेज़ी से उलटी तरफ भागा। भागने में पाँव फिसला तो वहीं गिर पड़ा। उसके ऊपर सातवीं के तीन-चार खिलाड़ी गिर पड़े। बॉल जहाँ थी वहीं पड़ी रही। कक्कु ने जब बॉल देखी तो झपटकर अपने कब्ज़े में कर ली। वह बॉल लेकर तेज़ी से दौड़ा। सातवीं का गोलकीपर कक्कु को निशाना बनाता हुआ दौड़ा। कक्कु को उसने गिरा भी दिया। उन दोनों के ऊपर सातवीं के बचे हुए खिलाड़ी कूदे। मैदान में खिलाड़ियों के दो ढेर पड़े हुए थे। एक ढेर से निकल राजू ज़ोर-ज़ोर-से रो रहा था। दूसरे ढेर में कक्कु जब उठा तो वह ऊपर से नीचे तक कीचड़ से सना था। गोलकीपर और उसके साथी तो भूतों जैसे दीख रहे थे। लेकिन बॉल गोल के अन्दर जा चुकी थी।

सातवीं के बच्चे काफी गुस्से में आ गए। उन्होंने ज़ोर-शोर से बॉल को मारना शुरू किया। छठी के बच्चे बॉल को जब मौका मिलता बाहर मार देते और कोशिश करते कि सातवीं के खिलाड़ियों से दूरी बनाए रखें। बॉल पानी में फूल गई थी सो पैर में भी काफी चोट लगती थी, ऐसा लगता था कि सातवीं वालों ने बॉल मारने की बजाय पैरों में मारने का ज़्यादा अभ्यास किया था। इसी बीच सातवीं के एक खिलाड़ी ने बॉल को ज़ोर से मारा और वह जाकर एक पेड़ की डाल से टकरायी। यह क्या! बॉल से अचानक तेज़ी से हवा निकलने लगी। शायद कोई तिनका बॉल में घुस गया था। बॉल बेकार हो गई थी। अब उससे खेला नहीं जा सकता था। खेल वहीं रोकना पड़ा। सातवीं के बच्चे काफी खीझे हुए थे कि छठी वालों ने पहले ही एक गोल कर दिया था। वे तो चाहते थे कि खेल किसी तरह जारी रहे लेकिन यह सम्भव नहीं था। इस तरह जीत छठी के बच्चों की हुई। लेकिन बॉल फूटने का गम कक्कु और दीपू को खाए जा रहा था। उसके बाद सातवीं वालों ने उन्हें कभी परेशान नहीं किया।

पी.के. बसन्त: दिल्ली के जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय में इतिहास पढ़ाते हैं।
सभी चित्र व सज्जा: कनक शशि: भोपाल में रहती हैं और स्वतंत्र कलाकार के रूप में पिछले एक दशक से बच्चों की किताबों के लिए चित्रांकन कर रही हैं।